वो तरीका

चार्ल्स डिकन्स

रूपान्तरण : स्मिता अग्रवाल

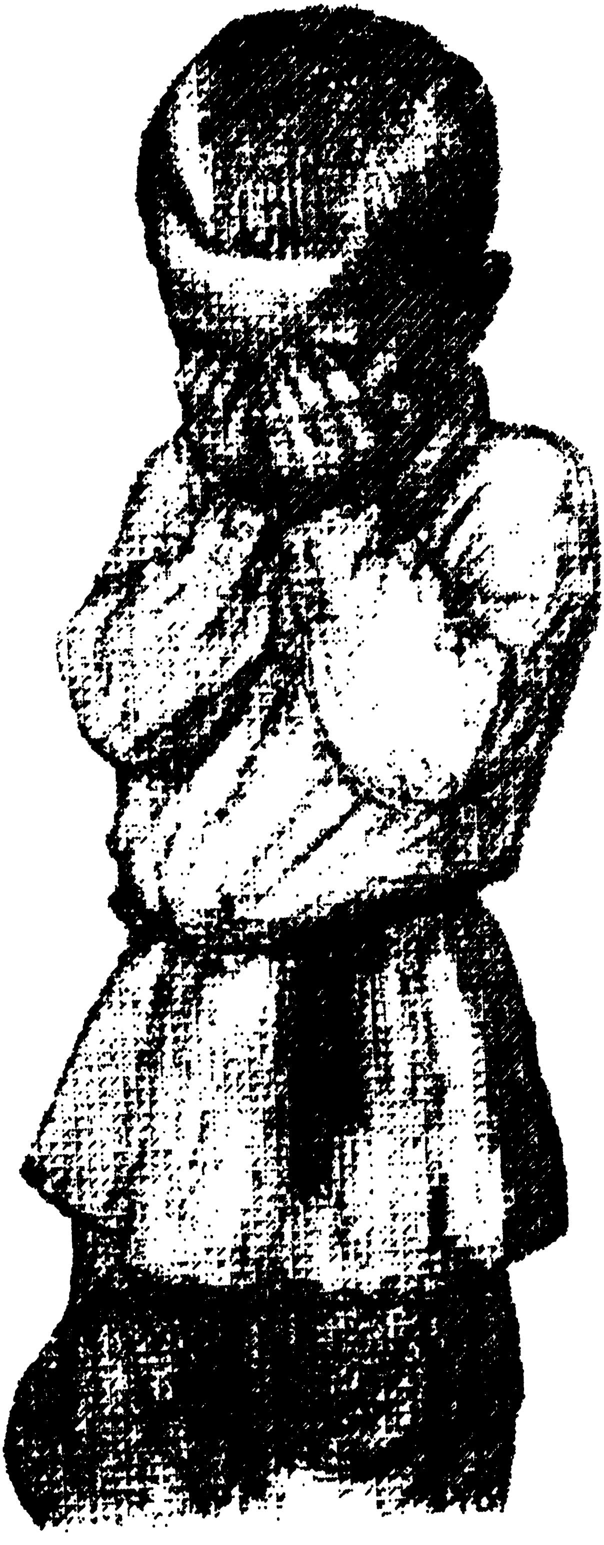

पुस्तक अंश

"पार्वती", मामा कहते हैं, "लड़के के साथ सख्ती बरतो! अन्नु, अन्नु मत करो! ये क्या बचपना है? या तो इसे अपना पाठ याद है, या फिर नहीं है।"

"भूल गया है" मां कहती है।

"इसका मतलब है पार्वती", मामा तुरन्त कहते हैं, "कि उसे किताब वापस दो और देखो कि याद करे।"

"हां, हां भैया", मां कहती है, "यही करने जा रही हूं। चल अन्नु फिर से कोशिश कर, और अब बेवकूफी मत करना।"

कई दफा मेरे बोर्डिंग स्कूल जाने की बात होती थी। शुरूआत मामा से ही होती थी और मां के पास तो सिवाय हामी भरने के कोई चारा न होता था। लेकिन कभी कुछ तय नहीं हुआ। और इस दौरान मेरी पढ़ाई घर पर ही चलती रही।

क्या मैं कभी उस पढ़ाई को भूल पाऊंगा?

मेरी पढ़ाई का घण्टा वैसे तो मेरी मां की देखरेख में बीतता था पर छत्रछाया तो मामा की ही रहती थी, जो हरदम मौजूद रहते थे और उनके लिए यह अच्छा मौका होता था मेरी मां को पाठ पढ़ाने का कि सख्ती रखना क्यों ज़रूरी है। जब मैं और मां अकेले होते थे तब तो मुझे पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं आती थी और मन भी लगता था। मुझे हल्का-हल्का याद है उनकी गोद में बैठकर अक्षर सीखना। आज भी जब मैं मोटे काले अक्षर देखता हूं तो 'ख' और 'छ' की आकृतियां मुझे तब की ही तरह अजीब घुमावदार और 'र' और 'त' की आकृतियां आसान, खुश-मिजाज़ नज़र आती हैं। उकताहट और अनमनेपन की कोई याद उनके साथ नहीं जुड़ी है बल्कि मगरमच्छ वाले पाठ तक तो मैं फूलों भरे रास्ते पर चलता हुआ पहुंच गया था। और सारे रास्ते मां की प्यार भरी आवाज़ और खुशनुमा तरीका मुझे उत्साहित करता रहा था। पर उसके बाद के पाठ मुझे यमदूत की तरह याद पड़ते हैं। मेरी शिक्षा के ये घण्टे बहुत लम्बे, बहुत ज़्यादा और बहुत मुश्किल होते थे। उनमें से कुछ तो पूरी तरह सिर के ऊपर से गुज़र जाते थे। उस दौरान मैं उतना ही बदहवास रहता था जितना कि मुझे लगता था कि मेरी मां भी रहती थीं।

मैं कोशिश करता हूं याद करने की कि वह समय कैसा होता था, और तब की एक सुबह को वापस लाने की: सवेरे का नाश्ता करने के बाद, मैं बैठक में प्रवेश करता हूं—किताबें, कॉपी और स्लेट हाथ में लिये। मेरी मां मेज़ पर मेरे लिए

तैयार बैठी है, पर शायद उससे ज़्यादा तैयार हैं मेरे मामा, खिड़की के पास अपनी आराम-कुर्सी में (हालांकि उनकी आंखें चश्मे के भीतर से अखबार को गौर से पढ़ती-सी लगती हैं)। उनके एक नज़र भरकर देखने से ही मुझे लगता जिस पाठ को मैंने जान लगाकर अपने भेजे में घुसाने की कोशिश की थी, वो सब फिसलता जा रहा है। कहां जा रहा है, मुझे मालूम नहीं। वैसे याद किए शब्द जाते भी कहां होंगे?

मैं मां को अपनी किताब पकड़ाता हूं। शायद यह व्याकरण की है, या फिर इतिहास की, या भूगोल की। उनके हाथ में देते हुए मैं एक आखिरी डूबती हुई नज़र पन्ने पर फिरा लेता हूं और जब तक याद ताज़ा है ऊंची आवाज़ में फर्राटे से उगलने लगता हूं। एक शब्द पर अटकता हूं। मामा सिर उठा कर ऊपर देखते हैं। एक और शब्द पर अटकता हूं। मामा के होठ कुछ भिंचते हैं। मेरे कान लाल हो जाते हैं, मैं आधा दर्ज़न शब्दों पर लड़खड़ा कर रुक जाता हूं। मुझे लगता है कि अगर मां दिखा पाती तो मुझे किताब का पन्ना दिखा देतीं, पर उनकी हिम्मत नहीं होती और वे धीरे से कहती है,

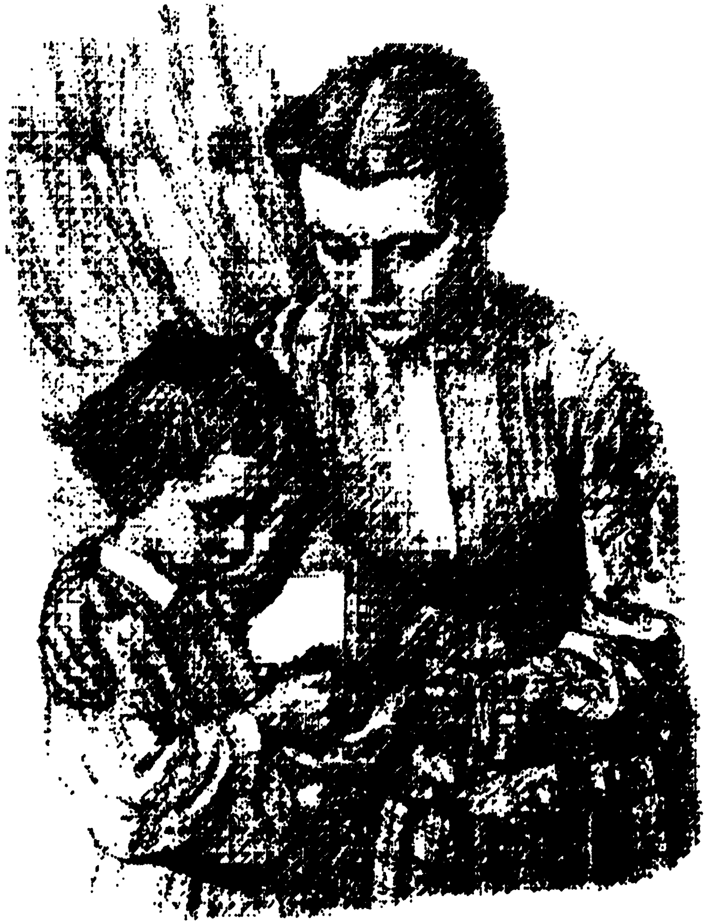

"अन्नु, ए अन्नु।"

"पार्वती", मामा कहते हैं, "लड़के के साथ सख्ती बरतो! अन्नु, अन्नु मत करो! ये क्या बचपना है? या तो इसे अपना पाठ याद है, या फिर नहीं है।"

"भूल गया है" मां कहती है।

"इसका मतलब है पार्वती," मामा तुरन्त कहते हैं", कि उसे किताब वापस दो और देखो कि याद करे।"

"हां, हां भैया," मां कहती है, "यही करने जा रही हूं। चल अन्नु फिर से कोशिश कर, और अब बेवकूफी मत करना।"

मैं आदेश के पहले हिस्से का तो पालन करता हूं, एक दफा और कोशिश करके, लेकिन दूसरे हिस्से में मैं उतना कामयाब नहीं हो पाता, क्योंकि मैं वाकई बहुत बेवकूफ हूं। मैं पाठ के उस पुराने बिन्दु पर पहुंचने के पहले ही लड़खड़ा जाता हूं, जहां पहले मुझे कोई दिक्कत नहीं थी, और ठहर कर ध्यान करता हूं। पर पाठ के बारे में मैं सोच ही नहीं पाता।

मामा के चश्मे के फ्रेम के बारे में सोचने लगता हूं, या उनके अखबार के पन्ने में कितने शब्द छपे होंगे, या ऐसी ही किसी बेसिर-पैर चीज़ के बारे में। मामा धैर्य खो बैठते है जिसका कि मैं कबसे इंतज़ार कर रहा हूं। मेरी मां हार मानकर किताब बंदकर देती है, जैसे कि अब इस पाठ को और नहीं झेल पाएगी।

लेकिन पूरे न हो सकने वाले पाठों की सूची बढ़ती ही जाती है, और साथ ही साथ मेरा बौड़मपना भी। मैं बहुत हताश हो जाता हूं। ऐसा लगता है कि मैं एक दलदल में धंसता जा रहा हूं लेकिन वहां से निकलने का ख्याल छोड़ सिर्फ अपने को किस्मत के हवाले कर देता हूं। कातरता से मैं और मां एक दूसरे को देखते हैं। जैसे-जैसे मैं एक-पर-एक गलतियां करता जाता हूं, वो वाकई उदासी भरा दृश्य होता है। पर इन पाठों के दौरान बात सबसे ज़्यादा तब बिगड़ती है जब मेरी मां मुझे होठों के इशारे से याद दिलाने की कोशिश करती है, और मामाजी मानो इसी क्षण के इंतज़ार में बैठे थे, गहरी, चेतावनी भरी आवाज़ में कहते हैं:

"पार्वती!"

मेरी मां चौकती है, लाल हो जाती है, और हल्के से मुस्कराती है। मामा कुर्सी से बाहर आ कर किताब ले लेते हैं, या तो मुझ पर फेंक के मारते हैं या मेरा कान उमेठते हैं, और कंधों से पकड़ कर मुझे कमरे से बाहर कर देते हैं।

पाठ पूरे हो जाएं तो भी क्या! अभी असली चीज़ तो बाकी है – वो पहाड़नुमा सवाल। इसे मेरे लिए ही ईजाद किया गया है। मामा की आवाज़ आती है, "अगर मैं बिस्कुट वाले की दुकान में जाता हूं और पांच हजार बिस्कुट खरीदता हूं – एक बिस्कुट की कीमत दो रुपए छः आना है, तो कुल कितना पैसा हुआ?" मामा की आंखों की चमक अब भी मुझे साफ नज़र आ रही है। मैं इन बिस्कुटों में उलझकर बगैर नतीजे तक पहुंचे ही दोपहर से रात कर देता हूं। भभूतिया बाबा की तरह स्लेट की गर्द मेरी खाल

के पोरों में बैठ जाती है, एक रोटी खाने में मुझे मिलती है, और सारी शाम मुझे नकारे की तरह रखा जाता है।

आज इतनी दूरी से जब मैं उन दिनों की ओर देखता हूं तो लगता है कि अगर मेरी अभागी पढ़ाई ने यह दिशा न ली होती, अगर मामा की छत्र-छाया मुझ पर न होती तो शायद मैं बहुत अच्छा कर सकता था।

लेकिन मामा का असर मुझ पर ऐसा होता था जैसे चिड़िया के बच्चे पर सांप का। कभी-कभार मेरी सुबह की पढ़ाई गुज़ारे लायक हो भी जाती, तब भी मुझे छूट नहीं मिलती। असल में मामा मुझे खाली देखना सहन नहीं कर सकते थे। अगर मैं ज़रा-सा भी ज़ाहिर कर देता कि मैं इस वक्त कोई काम नहीं कर रहा हूं तो वे फौरन मेरी मां का ध्यान इस ओर दिलवाते और कहते, "पार्वती काम जैसी कोई चीज़ नहीं है, छोरे को लगा के रख" इसी के साथ धम्म से मेरे ऊपर काम का एक और दिल्द्दर आ गिरता। जहां तक मेरे उम्र के और बच्चों से मिलने-जुलने का सवाल था इसका मौका मुझे शायद ही कभी मिलता था, मामा की समझ में तो सभी बच्चे सांपों के झुण्ड की तरह होते हैं और एक दूसरे को दूषित करते हैं।

छह महीनों से अधिक समय तक चले इस बर्ताव का नतीजा यह हुआ कि मैं उदास, अनमना और ज़िद्दी हो गया। मां से हर रोज़ दूर रखे जाने और उनसे बढ़ते अलगाव ने मुझ पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाला।

मुझे विश्वास है कि सिर्फ स्थिति ने मुझे होश-हवास खोने से बचाए रखा। वह यह थी: मेरे पिताजी किताबों का एक छोटा-सा संग्रह छोड़ गए थे जो मेरे कमरे से लगे हुए छोटे कमरे में था। उस पर मेरी पहुंच थी और किसी का कोई दखल नहीं था। उस प्यारे छोटे-से कमरे से रॉबिन्सन क्रूसो, अलादीन, अलीबाबा, हामिद और मोगली जैसे शानदार सुनहरे दोस्त निकल कर आते थे, मेरा साथ देने के लिए। वे मेरी कल्पना को ज़िन्दा रखते थे, और मेरी उम्मीद को कि उस समय के बाद भी मेरी ज़िंदगी में कुछ था। मुझे हैरत होती है कि कैसे उस नाक रगड़ाई, भारी भरकम विषयों की पढ़ाई और हमेशा की गलतियों के बीच मैं उन किताबों को पढ़ने का वक्त निकाल पाता था। मुझे आश्चर्य होता है कि अपनी छोटी-छोटी मुश्किलों (जो उस समय मेरे लिए बहुत बड़ी थीं) के दौरान भी मैं खुद को उन कहानियों के अच्छे पात्रों की जगह रखकर और मामा को सभी ज़ालिम पात्रों

का जामा पहना कर कैसे सांत्वना पाता था।

मैं एक हफ्ते तक प्रेमचंद की 'ईदगाह' का हामिद बना रहा हूं। पूरे महीने तक मैंने अलीबाबा को अपने में उतार कर रखा है। अलमारी के खानों में सजी सिंदबाद की समुद्री यात्राओं पर तो मैं लालच से टूट पड़ता था, और दिनों दिनों तक सरकण्डे के तीर कमान और मेज़पोश का परचम उठाए इस तरह घूमा करता था मानों हर समय मेरी जान दांव पर लगी हुई हो और वहशी किसी भी समय आकर धावा बोल देंगे। यह कप्तान व्याकरण की भूल के कारण कान उमेठे जाने पर भी अपना बड़प्पन नहीं खोता था। कप्तान तो हीरो था – दुनिया भर की भाषाओं के व्याकरण से ऊपर।

यही मेरे लिए एक अकेला रास्ता था जो मुझे लगातार राहत देता रहता था। जब मैं सोचता हूं तो मेरे मन में हमेशा तस्वीर बनती है गर्मियों की एक शाम की: लड़के बाहर मंदिर के पेड़ के नीचे खेल रहे हैं, मैं अपने पलंग पर बैठा हूं और ऐसे पढ़ रहा हूं जैसे मेरी जान उस पर टिकी है। पड़ोस का हर खलिहान, मंदिर का हर पत्थर, उसके आसपास की हर ज़मीन मेरे मन में उन किताबों से जुड़ी थी और किसी-न-किसी कहानी का कोई न कोई वाक्या वहां घटा था। मैंने देखा है सिंदबाद को मंदिर की चोटी पर चढ़े, दूर समुद्र को देखते हुए, मैंने देखा है हामिद को बाज़ार के हलकू राम लुहार से चिमटा खरीदते हुए, मैंने देखा है मरजीना को रात के अंधेरे में आकर हमारे घर के दरवाज़े पर निशान लगाते हुए। खैर वापस आता हूं मैं अपने इतिहास के उसी समय पर जहां तक हम अभी पहुंचे हैं।

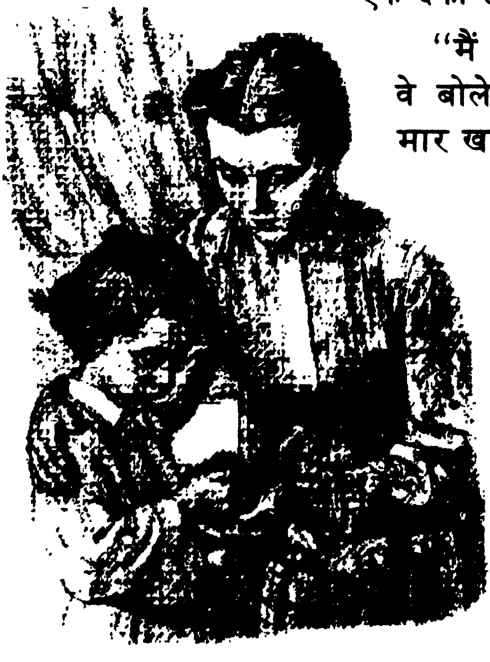

एक सुबह जब अपनी किताबें लिए मैं बैठक में पहुंचा, तो मां चिन्तित नज़र आ रही थी और मामा कड़क भाव से एक हन्टर के सिरे पर कुछ लपेट रहे थे – चिकना मज़बूत हन्टर! मुझे देखते ही उन्होंने लपेटना छोड़ कर हन्टर को एक दफा हवा में सरसराया।

"मैं बता रहा हूं पार्वती" वे बोले, "मैं खुद कई दफा मार खा चुका हूं।"

"हो सकता है भाई साब", मेरी मां रुक-रुक कर दबी आवाज़ में बोली, "पर क्या आप सोचते हो इससे आपका कोई फायदा हुआ?"

"क्या इससे मुझे कुछ नुकसान हुआ?" मामा ने गम्भीरता

से पूछा।

"भाई साब......." कहते कहते मां और कुछ नहीं बोल सकी।

मुझे सिहरन के साथ महसूस हुआ कि शायद इस वार्तालाप के साथ मेरा कुछ संबंध है और मैंने मामा से नज़र मिलाने की कोशिश की।

"आज , अन्नु" वो बोले, "तुझे हमेशा से ज़्यादा होशियार रहना है।" उन्होंने हन्टर को एक बार और फटकारा और अपनी तैयारी पूरी कर लेने के बाद, पास ही फर्श पर रख दिया। एक पैनी नज़र मुझ पर डालने के बाद उन्होंने अपना अखबार उठा लिया।

मेरी होशियारी को उभारने के लिए यह अच्छी शुरूआत थी। मैंने अपने पाठ के शब्दों को दिमाग से फिसलते हुए पाया, एक-एक करके, या लाइन-दर-लाइन नहीं बल्कि पेज-दर-पेज मैंने कोशिश की उन्हें थामने की, पर उनके नीचे तो जैसे पहिए लगाए गए थे और इतनी सरलता से वे मुझसे दूर होते जा रहे थे कि मैं उनको रोक ही नहीं पा रहा था।

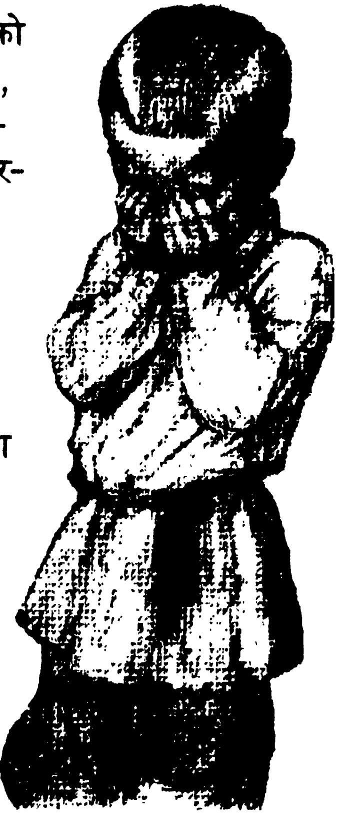

शुरूआत खराब हुई और आगे और भी बुरा होता गया। मैं तो आया था यह सोच कर कि आज हो न हो अच्छा करके ही दिखाऊंगा। मैं इस भ्रम में था कि मैंने बहुत अच्छी तैयारी की है। पर यह गलत साबित हुआ। किताब-पर-किताब मेरी हार के ढेर पर गिरती गई, और मामा पूरे वक्त हम पर कड़ी नज़र रखे हुए थे। जब आखिरकार हम पांच हज़ार बिस्कुटों पर आए (आज मामा ने बिस्कुट को बदल कर हन्टर कर दिया था) तो मेरी मां फूट कर रो पड़ी।

"पार्वती!" मामा ने चेतावनी भरी आवाज़ में कहा।

"नहीं, नहीं मैं ठीक हूं," मां बोली।

मैंने मामा को देखा, होंठों को हल्का-सा भींचकर उठ खड़े होते हुए। हन्टर हाथ में था। बोले, "पार्वती तुम से उम्मीद नहीं है कि तुम्हारे बेटे ने आज तुम्हें जो चिन्ता और तकलीफ दी है उसे तुम सख्ती से सहन कर पाओगी। ये तुम्हारे बस का नहीं है। हां, पहले से तुम बहुत बदली हो, बहुत मज़बूत हुई हो, पर ये तुम्हारे लिए ज़्यादा ही हो जाएगा। अन्नु, तू और मैं ऊपर चलते हैं।" जैसे ही वो मुझे कमरे से बाहर ले जाने लगे मां भागकर आई। मामा बोले, "पार्वती तुझे बिल्कुल अक्ल नहीं है क्या?" मां ने कानों पर हाथ रख लिए और मुझे उसके रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

वो मुझे सीढ़ियों से ऊपर अपने कमरे की तरफ धीमी

गति से और पूरी गम्भीरता से ले जा रहे थे – मुझे यकीन है कि मुजरिम को उसके अंजाम तक पहुंचाने के भाव से वे खुश थे – और ऊपर पहुंचते ही अचानक उन्होंने मेरा सिर मरोड़कर अपनी बांह के नीचे फंसा लिया।

“मामा, मामा”,मैं चिल्ला पड़ा, “मुझे मत मारो! मैंने याद करने की कोशिश की है, पर जब आप वहां होते हो तो मैं नहीं कर पाता, सच में नहीं कर पाता!”

“नहीं कर पाते, अन्नु?” वो बोले। “चलो देखते हैं।”

उन्होंने मेरा सिर जकड़ रखा था, पर किसी तरह मैं खुद को मरोड़कर उनसे छूट गया एक क्षण के लिए मैंने उनको रोका, यह कहते हुए कि वो मुझे ना मारें। एक क्षण भर ही मैं उन्हें रोक पाया, क्योंकि अगले ही क्षण उन्होंने मुझे बुरी तरह चपेटा, और उसी क्षण मैंने उनका वो हाथ जिससे उन्होंने मुझे पकड़ रखा था अपने दांतों के बीच पकड़ लिया और पूरे ज़ोर से काट लिया। अब भी उस बात को सोचकर मेरे दांत भिंच जाते हैं।

अब उन्होंने मुझे पीटा, और ऐसा पीटा कि जैसे पीट–पीट कर मेरी जान ही निकाल देंगे। जो शोर हम कर रहे थे उस शोर से भी ज़्यादा तेज़ आवाज़ें मुझे नीचे से आ रही थीं। मुझे ऊपर दौड़ने की आवाज़ सुनाई पड़ी – मां चीख रही थी – और साथ में बसंती भी जो हमारे घर पर काम करती थी।

थोड़ी देर बाद मामा जा चुके थे, और बाहर से दरवाज़े पर ताला लगा दिया गया था। मैं हरारत में, तमतमाया हुआ, सूजा हुआ, अपने मरियल तरीके से उफनता हुआ ज़मीन पर पड़ा था।

चार्ल्स डिकन्स के उपन्यास **‘डेविड कॉपरफील्ड’** से एक अंश। चार्ल्स डिकन्स का जन्म इंग्लैंड के पोर्टसमाउथ में हुआ। उपन्यासकार होने से पहले वे इंग्लैंड की संसद में रिपोर्टर के रूप में काम करते थे। प्रसिद्ध उपन्यास **‘डेविड कॉपरफील्ड’** पहली बार 1850 में प्रकाशित हुआ था। इसे उनका आत्मकथा-नुमा उपन्यास माना जाता है। डिकन्स ने इस उपन्यास और उसके पात्र डेविड के बारे में लिखा था, “अपनी सारी किताबों में से सबसे ज़्यादा मैं इसे पसंद करता हूं। जिस तरह सबसे प्यारा बच्चा माता-पिता के दिल में रहता है, एक प्यारा बच्चा मेरे भी दिल में है। और उसका नाम है डेविड कॉपरफील्ड।”

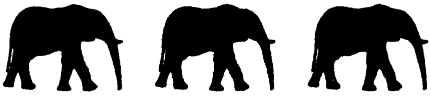- स्मिता अग्रवाल - जयपुर, राजस्थान में लोक जुम्बिश परियोजना में कार्यरत।